

सामाजिक समावेश और बहिष्करणः मेरे अनुभव

दीपिका के. सिंह

मैं एक ऐसे स्कूल में विद्यार्थी होने के अपने अनुभव बाँट रही हूँ जो मुख्यतः मध्यमवर्गीय पड़ोस की जरूरतों को पूरा करता था। जिसके अधिकांश विद्यार्थियों के माता–पिता एक से उद्यम में लेकिन अलग–अलग भूमिकाओं में लगे होते थे, झाड़ू लगाने से लेकर किसी विभाग के निदेशक तक।

मुझे याद है कि मैं आठवीं कक्षा में थी। गणित की कक्षा थी, हमारी शिक्षिका हमें पढ़ा रही थीं। कार्यालय में काम करने वाला लड़का कक्षा में आया और उसने शिक्षिका को एक कागज दिया। शिक्षिका बोलीं, "मैं जिन बच्चों के नाम पुकारूँगी उन्हें अपनी छात्रवृत्ति लेना है।" उन्होंने कुछ नाम पढ़े और फिर एक और नाम लिया, यह नाम एक होशियार लड़की का था। वह हमेशा पहले तीन स्थानों में आती थी और शिक्षिका उसे पसन्द करती थीं। शिक्षिका उसके कपड़े पहनने के ढंग पर भी टिप्पणी करती थीं। यदि वह टी–शर्ट पहनती थी तो शिक्षिका उससे कहती थीं कि "अच्छी लड़कियों" को ऐसे कपड़े नहीं पहनना चाहिए। उन्होंने उस सूची से उस लड़की का नाम पढ़ा, लड़की अपनी बैंच से उछलकर खड़ी हो गई, लेकिन शिक्षिका बोलीं "ओह! तुम अनुसूचित जाति से हो, छी छी।"

मुझे वह "छी छी" अभी भी याद है। यह जाति व्यवस्था से मेरा पहला परिचय था और मुझे समझ में आ गया था कि अनुसूचित जाति से होने में कुछ गड़बड़ी जरूर थी इसीलिए शिक्षिका ने वह टिप्पणी की थी। लेकिन उसके बारे में कुछ अच्छा भी था जिसकी वजह से ऐसे विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति मिलती थी। शिक्षिका द्वारा अपमानित की गई मेरी उस दोस्त के लिए वह वाकई बहुत कटु अनुभव रहा होगा।

दूसरा अनुभव जो मुझे याद है, जब मेरे एक मित्र का एक अन्य सहपाठी के साथ झगड़ा हो गया था, तो मेरे दोस्त ने उसे 'एबीसी' कहा था। मैंने उससे पूछा कि यह एबीसी का क्या मतलब था, तो उसने मुझे समझाया कि उसका मतलब था 'ए, बीसी मतलब बैकवर्ड क्लास (पिछड़ी जाति)।' तब हम कक्षा 8 या 9 में थे।

ये अनुभव स्कूल में एक खास समूह के बच्चों के साथ होने वाले भेदभाव और उससे भी अधिक उन्हें कलंकित करने से जुड़े मुद्दों की तरफ इशारा करते हैं। ये साथ ही कुछ खास तरह की रूढ़िवादी बातों और 'छवियों' (जैसे इस मामले में एक 'अच्छी लड़की' की छवि) को सामान्यतः का रूप देने और उन्हें और मजबूती प्रदान करने में स्कूल की भूमिका को भी उजागर करते हैं। ये घटनाएँ किसी स्कूल में विद्यार्थियों और शिक्षकों के बीच तथा विद्यार्थियों के बीच आपस में रोज होने वाले भेदभाव से भरे व्यवहार की तरफ भी इशारा करती हैं। हालाँकि एक मध्यमवर्गीय लड़की शिक्षा हासिल करने और स्कूल जाने में सफल रहती है लेकिन उसे लिंग–आधारित रूढ़िवादी धारणाओं तथा जातिगत भेदभाव का सामना करना पड़ता है।

लेकिन, मुझे यह भी याद है कि किस तरह कुछ शिक्षकों और एक नई प्राचार्य ने विद्यार्थियों के बीच खड़ी कर दी गई 'दीवारों' को गिराने की तथा अलग–अलग बच्चों पर लगा दिए ठप्पों को हटाने की कोशिश की थी। जब मैं माध्यमिक स्कूल में थी तो हमारी कक्षा में दो अलग–अलग समूह थे। एक समूह उन विद्यार्थियों का था जो शारीरिक रूप से ताकतवर दिखते थे और खेलों में अच्छा करते थे। दूसरा समूह था जो शारीरिक रूप से उतने शक्तिशाली नहीं दिखते थे, लेकिन पढ़ाई में अच्छे थे। ये दो बिलकुल स्पष्ट समूह थे।

ये दीवारें उपलब्धियों और शिक्षकों की पसन्द के कारण खड़ी हुई थीं। शारीरिक शिक्षा के शिक्षक शारीरिक रूप से सशक्त विद्यार्थियों को पसन्द करते थे और चाहते थे कि वे विभिन्न दलों का नेतृत्व करें। इस समूह के अधिकांश विद्यार्थियों ने स्कूल के लिए बहुत से पुरस्कार भी जीते। वहीं दूसरे समूह के विद्यार्थी इस बात का विरोध करते थे कि उन्हें टीमों का नेतृत्व नहीं सौंपा जाता था। पर जब

बात भाषा, गणित और विज्ञान की आती थी, तो शिक्षक कक्षा में होने वाली चर्चाओं में उन विद्यार्थियों को मौका देते थे जो परीक्षाओं में अच्छे अंक लाते थे, जो अपने विचारों को स्पष्ट ढंग से सामने रख पाते थे, जिनकी अँग्रेजी अच्छी थी और जिनके पास कभी–कभी उन प्रश्नों के भी उत्तर होते थे जो हमारी पाठ्यपुस्तकों से बाहर के होते थे।

मुझे 9वीं कक्षा की अपनी मौखिक परीक्षा याद है, जब शिक्षिका ने मुझसे पूछा था कि 'दूध का रंग सफेद क्यों होता है?' और मैंने कहा था 'उसमें पाए जाने वाले प्रोटीन अवयव के कारण'। शिक्षिका बहुत जोर से हँसीं और मुझे एहसास हुआ कि मेरा उत्तर गलत था, लेकिन उन्होंने हमें 'सही' उत्तर नहीं बताया। एक 'वैज्ञानिक तथ्य' होने के चलते इसका एक ही सही उत्तर हो सकता था और शिक्षिका के लिए किसी विद्यार्थी द्वारा यहाँ 'व्यवहारिक बुद्धि' लगाने सम्बन्धी समझ की पड़ताल करने की कोई गुंजाइश नहीं थी। न ही वे ऐसा उत्तर देने के कारण को जानने की इच्छुक थीं। परीक्षा के अन्त में शिक्षिका ने एक लड़के की तारीफ की, क्योंकि उनके अनुसार वह विज्ञान के अपने ज्ञान की बदौलत हमेशा प्रथम स्थान पाता था। उनकी नजर में वह अकेला विद्यार्थी था जिसे पता होता था कि प्रयोगशाला में किसी उपकरण विशेष का प्रयोग किस ढंग से करना था। हममें से अनेक बच्चे इस सोच में पड़ गए कि शिक्षिका ने हमसे उस उपकरण का इस्तेमाल कभी कराया ही नहीं और वे अपेक्षा करती थीं कि हमें यह पता होना चाहिए कि वह उपकरण ऐसे क्यों काम करता है।

मैं इस अनुभव को उस पूरी व्यवस्था से जोड़कर देखती हूँ जिसके माध्यम से स्कूलों को विद्यार्थियों की छंटनी करने के लिए तैयार किया जाता है। शिक्षिका ने भी प्रश्नों को एक खास ढंग से तैयार करके यही सुनिश्चित किया कि सिर्फ कुछ बच्चे इसका जवाब दे सकेंगे। क्योंकि उन्हें यह भली–भाँति पता था कि स्कूल में प्रयोगशाला के उपकरण अभी–अभी आए थे और माध्यमिक स्कूल के लिए पुस्तकालय तैयार किया जा रहा था। इसलिए पाठ्यपुस्तक से हटकर किसी भी तरह की जानकारी तभी हासिल की जा सकती थी जब विद्यार्थियों के माता–पिता को इस तरह का ज्ञान हासिल होता और वे अपने बच्चे को बता सकते या फिर बच्चे के पास घर में सम्बन्धित स्रोत सामग्री होती, या वे ट्यूशनों के माध्यम से अतिरिक्त पढ़ाई कर रहे होते।

यह बात हमें श्रमजीवी वर्ग के बच्चों और 'संभ्रान्त' वर्ग के बच्चों के मुद्दे पर ले जाती है कि किस तरह स्कूल 'संभ्रान्त वर्गों' को फायदा पहुँचाते हैं। कुछ और भी मौके थे जहाँ अँग्रेजी की शिक्षिका ने शारीरिक रूप से सशक्त समूह से एक विद्यार्थी को चुना, और शैक्षणिक समूह से एक विद्यार्थी को। उन्होंने पहले 'सशक्त' विद्यार्थी से सवाल पूछा, और जब उसने जवाब दिया तो वे हँसने लगीं और बोलीं, 'देखो, यह है इसकी जानकारी'। शिक्षिका को पता था कि वह विद्यार्थी उत्तर नहीं दे पाएगा। जब वे उस विद्यार्थी का मजाक उड़ा रही थीं तो हममें से कुछ लोग सोच रहे थे कि सही जवाब क्या हो सकता था, और किसी ने उस दूसरे विद्यार्थी को उत्तर सुझा दिया जिसने फिर सही उत्तर दे दिया। वास्तविकता यह थी कि इस मामले में दोनों ही विद्यार्थियों को उत्तर नहीं पता था, लेकिन एक के पास उत्तर को सही करने का तथा साथियों से सहयोग लेने का मौका था जबकि दूसरे विद्यार्थी के साथ ऐसा कुछ भी नहीं था।

यह घटना कई मुद्दों को उठाती है, जिसका सम्बन्ध न सिर्फ विद्यार्थियों पर कुछ निश्चित ठप्पे लगा दिए जाने के बारे में, बल्कि किसी विद्यार्थी का मजाक उड़ाने और उसके आत्मसम्मान और आत्मविश्वास को चोट पहुँचाने से भी है। ये घटनाएँ इन मुद्दों को भी उठाती हैं कि संसाधनों की 'पूँजी' तक विद्यार्थियों की पहुँच किस तरह होती है। किस तरह स्कूल एक खास प्रकार के ज्ञान को बढ़ावा देता है, और किस ढंग से उस ज्ञान का इस्तेमाल कुछ बच्चों को अपमानित करने तथा ऊँच–नीच के वर्ग बनाने के उपकरण के रूप में करता है। ये घटनाएँ ये भी दिखाती हैं कि बच्चे एक–दूसरे की मदद किस प्रकार करते हैं। इस तरह की घटनाएँ निश्चित रूप से कक्षा के भीतर कई बच्चों को अपमानित होने के डर से मौन बना सकती हैं। इसलिए, जहाँ शिक्षा का उद्देश्य दमित लोगों को आवाज देना होना चाहिए वहीं हकीकत में यह उन्हें और मूक बना देती है।

हालाँकि हमारे कुछ शिक्षकों ने उन लोगों की भागीदारी सुनिश्चित जरूर की जिन पर 'पीछे बैठने वाले या मूर्ख' का ठप्पा लगा दिया गया था। शिक्षक ने कक्षा में किए जाने वाले कार्य के दौरान उनके साथ कुछ समय बिताना, उनकी कॉपियाँ जाँचना भी शुरू किया; ये वे कक्षाएँ होती थीं जिनमें हम सभी भागीदारी करते थे। हमारे नए प्राचार्य ने पहले से चले आ रहे ठप्पों को हटाने की कोशिश की। सभी बच्चों का स्कूल के सभी कार्यक्रमों में भाग लेना अनिवार्य कर दिया गया। उन्होंने सुनिश्चित किया कि वे बच्चे जिन्होंने कभी किसी वाद–विवाद में भाग नहीं लिया था, उन्हें इसकी तैयारी करने के लिए शिक्षकों का सहयोग

मिले, उन्होंने खुद भी इसके लिए समय दिया। वे बच्चे जिन्होंने कभी टीमों का नेतृत्व नहीं किया था, उन्हें टीमों का कप्तान बनाया गया, इनमें से कुछ समूह जीते भी। मुझे याद है कि कुछ विद्यार्थियों के बारे में मेरे जो विचार थे, वे जरूर बदले, मैं यह नहीं कह सकती कि शिक्षकों ने जो ठप्पे लगा दिए थे, उन्हें (उनके दिमागों में) चुनौती मिली कि नहीं।

इन अनुभवों के माध्यम से सांस्कृतिक पूँजी के विचार को भी उठाया जा सकता है क्योंकि एक खास वर्ग या विद्यार्थियों के पास दूसरे विद्यार्थियों की तुलना में सांस्कृतिक लाभ हासिल था। इसे भाषा, उन्हें मिलने वाले मौकों, माता–पिता के सहयोग, ज्ञान के स्रोतों तक पहुँच जिसकी स्कूल में सराहना की जाती थी, और व्यवहार के स्कूल में सराहे जाने वाले तौर–तरीकों, के सन्दर्भ में देखा जा सकता था। यह अनुभव समावेशी संस्कृति के विकास में शिक्षकों और प्राचार्य की भूमिका को सामने लाता है।

एक और घटना मुझे याद आती है, जब हमारे प्राचार्य हमें वाणिज्य का विषय पढ़ा रहे थे, उन्होंने पूछा 'शेयर क्या होते हैं'। मेरे पिता मुझे छोटी उम्र से ही न सिर्फ स्कूटर सुधारने के काम में अपने साथ रखते थे, बल्कि शेयरों के आवेदन पत्र भी भरवाते थे और मैं उस मौके का उपयोग आवेदन पत्र पर छोटे अक्षरों में लिखी बातों को पढ़ने में करती थी। प्राचार्य के इस सवाल के जवाब में मैंने उस पूरी प्रक्रिया को ही समझा दिया कि कम्पनियाँ किस प्रकार शेयर जारी करती हैं, आवेदन पत्र कैसे भरे जाते हैं, कम्पनी को पैसे कैसे दिए जाते हैं और फिर बाद में लाभ को कैसे बाँटा जाता है। मेरा एक सहपाठी, जो 'होशियार' वर्ग से था, चिल्लाया कि यह सही उत्तर नहीं था, सही उत्तर उसे पता था। शिक्षक (प्राचार्य) ने दोनों उत्तर सुने और बोले कि एक उत्तर पाठ्यपुस्तक से था और दूसरा ज्यादा व्यावहारिक था। पहली बार मुझे लगा कि पिताजी के साथ मैं जो काम करवाती थी, वह मेरी स्कूली शिक्षा में भी कुछ प्रासंगिकता रखता था। हालाँकि यह घटना शारीरिक श्रम से जुड़ी हुई नहीं है पर इसे बच्चों के काम को शिक्षा से, विद्यार्थियों के अनुभव से और पढ़ाई में की जाने वाली मेहनत से जोड़कर देखने के मुद्दे से जुड़ा माना जा सकता है। इस मामले में, दोनों ही उत्तर सही थे, शिक्षक ने दोनों उत्तरों को स्वीकार किया और इसका कारण भी समझाया। इसके अलावा उन्होंने एक उत्तर को दूसरे से श्रेष्ठ या कमतर भी नहीं बताया।

स्कूल में कुछ ऐसी गतिविधियाँ जरूर होती थीं जिन्हें 'समावेशी' माना जा सकता था। यह स्कूल एक स्टेट बोर्ड स्कूल था लेकिन ज्ञान की देवी का आह्वान करने के लिए हमारे स्कूल में 'सरस्वती वन्दना' के बजाय हम दिन के अन्त में अलग–अलग गीत गाते थे, जिसके बाद राष्ट्रगान होता था। हर शनिवार को अलग–अलग धर्मों जैसे जैन धर्म, बौद्ध धर्म, सिक्ख धर्म, इस्लाम, ईसाई धर्म की प्रार्थनाएँ गाई जाती थीं। हम सब अपने हाथ जोड़ते थे, अपनी हथेलियाँ खोलकर भी प्रार्थना करते थे और क्रॉस बनाने की भी कोशिश करते थे। मुझे इस दिन का इन्तजार रहता था और मुझे अपनी स्कूल डायरी में से इन प्रार्थनाओं को पढ़ना बहुत अच्छा लगता था।

वर्तमान परिदृश्य में जब पाठ्यक्रम के भगवाकरण के मुद्दे उठाए जाते हैं, सरकारी स्कूल जो सार्वजनिक संस्थाएँ होते हैं, वहाँ सरस्वती की प्रतिमाएँ लगी होती हैं और उनकी प्रार्थनाएँ होती हैं, जबकि भारत के संविधान के अनुसार स्कूलों को धर्मनिरपेक्ष होना चाहिए और उसे किसी धर्म को बढ़ावा नहीं देना चाहिए। 1990 के दशक में जिस स्कूल में मैं पढ़ी वह या तो उस समय की सामाजिक–राजनैतिक दशाओं को प्रतिबिम्बित करता है या वह पथभ्रष्टता की स्थिति को दिखाता है क्योंकि वह एक प्राइवेट स्कूल था और वहाँ आसानी से 'बहुसंख्यावाद' को बढ़ावा दिया जा सकता था, लेकिन हमारा स्कूल इसके उलट चला।

हम सभी बहिष्करण और भेदभाव के अनुभवों को याद कर सकते हैं, भले ही हम ऐसे स्कूलों में न पढ़े हों जो किसी खास वर्ग की जरूरतों का ध्यान रखता हो क्योंकि भेदभाव और बहिष्करण वर्ग, जाति, धर्म, लिंग, ग्रामीण–शहरी अन्तर, या आदिवासी–गैर आदिवासी संस्कृति जैसी पहचानों पर आधारित होता है। बल्कि ऐसी घटनाएँ जो पूरी तरह से शैक्षिक आधार पर किए गए भेदभाव की लगें, उनका गहरा जुड़ाव ज्ञान, शिक्षण, और मूल्यांकन के उस प्रकार से होता है जो पाठ्यक्रम व स्कूल स्वीकार करता है और जो किसी खास समूह के पक्ष में होते हैं। पर हमारे ऐसे अनुभव भी हैं जो 'सकारात्मक' हैं जहाँ हमने शिक्षकों की प्रेमपूर्ण भावनाओं और चिन्ताओं को महसूस किया। जहाँ हमें लगा कि हम सभी को भागीदारी का मौका मिल रहा था, सभी को उस मौके का फायदा उठाने के लिए सहयोग मिल रहा था, विविधता को न केवल सहन किया जा रहा था, बल्कि कई तरीकों से उसका उत्सव मनाया जा रहा था, ऊँच–नीच के वर्गों को चुनौती दी गई थी और भेदभाव के विरुद्ध आवाजें उठाई गई थीं।

उसी स्कूल ने, जहाँ मुझे कई बार अपमानित महसूस होना पड़ा, कई बार भेदभाव का शिकार होना पड़ा, कभी–कभी सबमें शामिल किए जाने का एहसास हुआ, कभी–कभी गर्व का अनुभव भी हुआ और कभी–कभी उपलब्धि जैसा एहसास भी हुआ। मुझे टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज जैसी संस्था से डॉक्टरेट की पढ़ाई करने के लिए तैयार किया। क्या स्कूल ने वर्ग, जाति, धर्म, लिंग पर आधारित ऊँच–नीच के क्रम और धार्मिक भेदभाव के प्रतिरूप को स्कूल के अन्दर दोहराने में अपनी भूमिका निभाई या क्या उसने ऊँच–नीच और भेदभाव की कुछ दीवारों को चुनौती देने में मेरी मदद की? या मुझे अपने आपको समाज के उन उभरते शहरी मध्यम वर्ग के लोगों में से एक मानना चाहिए जिन्हें शिक्षा के प्रसार से बहुत लाभ हुआ? स्कूल ने जरूर विद्यार्थियों को वरीयताएँ देकर पृथक किया–वे लोग जो औद्योगिक प्रशिक्षण की तरफ चले गए और वे जो आगे की पढ़ाई जारी रख सकते थे और इस प्रकार सामाजिक ऊँच–नीच के क्रमों को शैक्षिक ऊँच–नीच के क्रमों में बदल दिया गया। वेलस्कर (2005)। हम कई ऐसे सवाल उठा सकते हैं और परिवार की आकांक्षाओं, स्कूल के कामकाज के तरीकों और विभिन्न सामाजिक समूहों की शिक्षा को प्रभावित करने वाली वृहत सामाजिक–राजनैतिक दशाओं के मेल से जुड़ी बातें भी उठा सकते हैं। मैं इस लेख को वहीं खत्म करना चाहूँगी जहाँ से मैंने शुरुआत की थी – वह लड़की जिसे शिक्षिका ने उसकी जातिगत पहचान की वजह से अपमानित किया था, उसने पोस्ट ग्रेजुएशन किया और फिर एक सफेदपोश नौकरी हासिल की। उसके लिए और मुझ जैसे कई लोगों के लिए इस व्यवस्था ने उच्च शिक्षा में दाखिला लेने और श्रम बाजार में घुसने के मौके और गुंजाइश जरूर उपलब्ध कराई, भले ही हममें से कुछ लोग अपने परिवारों में मैट्रिक से आगे पढ़ने वाले पहले लोग थे। मैं शिक्षा की और अपने स्कूल की भूमिका को अनदेखा नहीं कर सकती, भले ही मैं उभरते शहरी मध्यम वर्ग की लड़की ही क्यों न थी लेकिन इससे मुझे पितृसत्तात्मक सोच, जाति और वर्ग के ढाँचों को चुनौती देने का मौका और गुंजाइश मिली।

मैं अपनी पीएच.डी के शोध निबन्ध, जिसका शीर्षक था, 'स्कूलों में सामाजिक समावेशनः विद्यार्थियों, शिक्षकों और माता–पिता के अनुभव', की निरीक्षक प्रोफेसर नन्दिनी मांजरेकर को धन्यवाद देती हूँ। उन्हीं के सुझाव पर मैंने अपने स्कूली अनुभवों के बारे में चिन्तन किया और उन्हें कलमबद्ध किया।

Bibliography

1. Benjamin, S., Nind, M., Hall, K., Collins, J., & Sheehy, K. (2003). Moments of inclusion and exclusion: pupils negotiating classroom contexts. British Journal of Sociology of Education, 24(5), 547-558.
2. Freire, Paulo. Pedagogy of the oppressed. Penguin Books.1996.
3. Sarup, Madan. Marxism and Education. Routledge and Kegan Paul Ltd, 1978.
4. Velaskar, P. (2005). Educational Stratification, Dominant Ideology and the Reproduction of Disadvantage in India. Understanding Indian Society: The Non-Brahmanic Perspective. New Delhi: Rawat Publications, 196-220.
5. Velaskar, Padma. "Unequal Schooling as a factor in the Reproduction of Social Inequality in India." Sociological Bulletin 39.1 (1990): 131-45.
6. Grioux, Henry A. Theory and Resistance in Education: A Pedagogy for the Opposition. Bergin & Garvey Publishers, Inc. 1983.
7. Manjrekar, Nandini. "Contemporary Challenges to Women's Education Towards and Elusive Goal" Economic and Political Weekly. Vol Oct 23, 2003
8. Pierre Bourdieu. The Forms of Capital. http://www.marxists.org/reference/subject/philosophy/works/fr/bourdieu-forms-capital.htm accessed on 17/4/2014.

दीपिका के. सिंह ने करीब ग्यारह वर्षों तक प्राथमिक शिक्षा के मुद्दे पर काम किया है। उनका लक्ष्य रहा है सरकारी स्कूलों का स्तर सुधारना तथा शान्ति को बढ़ावा देने और संघर्षों से मुक्ति पाने के माध्यम के रूप में शिक्षा का उपयोग करना। वर्तमान में वे टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, मुम्बई में शोध अध्येता के रूप में कार्यरत हैं। उनसे mswdeepika@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद** : भरत त्रिपाठी